प्राचीन काल में योग का ऐतिहासिक महत्व

पूजा
विद्यार्थी, एम. ए.
विभाग- योगा
श्री जे. जे. टी. विश्वविद्यालय, झुंझुनूं (राजस्थान)
ईमेल आईडी:– Poojakumari741406@gmail.com

सारांश

प्राचीन साहित्य में उपलब्ध शिक्षा प्रणाली पर दृष्टिक्षेप करने से प्राचीन काल की प्राचीन शारीरिक शिक्षा संस्कृति, विज्ञान और कला का सुव्यवस्थित तथा सुनियोजित रूप से सामने आता है। शिक्षा पाठ्यक्रम को देखने से स्वास्थ्य, शारीरिक दक्षता और मनोरंजन का संयुक्त रूप दिखाई देता है। उस समय आयुर्वेद, धनुर्वेद और गन्धर्ववेद, जो पाठ्यक्रम में सम्मिलित थे, इन सभी का अध्ययन करने पर स्वास्थ्य, बल संवर्धन, शारीरिक दक्षता तथा मनोरंजन का ज्ञान होता है। इन तीनों उपवेदो के अतिरिक्त योगाभ्यास, ब्रह्मचर्य के नियम तथा गीता के कर्मरत् रहने के वैज्ञानिक व दार्शनिक सिद्धान्तों ने व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने में तथा नैतिक और आध्यात्मिक विकास प्राप्त करने में महान योगदान दिया है। शरीर, मन और आत्मा के दर्शन से भली-भांति परिचित हो जाने के पश्चात् तथा जीवन में स्वास्थ्य, बल और मनोरंजन का दर्शन प्राप्त कर लेने के बाद अब हमें प्राचीन साहित्य में उपलब्ध विभिन्न प्रकार की योग का भी दर्शन प्राप्त होता है।

विषय संकेत:- योग, शिक्षा प्रणाली, शाररिक शिक्षा।

परिचय

प्राचीन भारत में योग के अन्तर्गत शरीर, मन और आत्मा इन तीनों को सम्मिलित किया गया था ताकि व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास हो सके। शारीरिक घरातल पर देखा जाए तो जो व्यक्ति कर्म में विश्वास रखते हुए कर्म करते चला जाए वह 'योगी' हैं। अपने जीवन में कर्म को स्थान देने वाला योगी व्यक्तियों में श्रेष्ठ होता है। कर्म के साथ-साथ जिनकी स्मृति परमात्मा में होती हैं वे योगियों में परमश्रेष्ठ योगी' समझे जाते हैं।

जो योगी मानसिकरूपेण विचलित नहीं होता वह काम, क्रोध इत्यादि संवेगों पर विजय प्राप्त करनेवाला होता है। इस प्रकार शरीर, मन और आत्मा के धरातल पर जो व्यक्ति परिपक्व हैं यही योगी समझा गया है।

योग यह शब्द 'युज' इस धातु से लिया गया है इसलिए इसका अर्थ जोड़, एकत्रीकरण, संगति हैं। गीता के अनुसार "आत्मा में स्थित होकर सहज ही परमात्मा से मन को जोड़ना तथा परमात्मा से संस्पर्श करके आंतरिक सुख व अनंत आनंद में स्थित होना 'योग' है।" दरअसल 'योग' मन पर नियंत्रण राखने की प्रक्रिया है। इस सम्बन्ध में नागेन्द्र का मत है - " योग वह व्यवस्थित सचेतन प्रक्रिया है जो मनुष्य के विकास की प्रक्रिया को अत्यधिक संकुचित कर सकती है।"

शरीर और मन की स्थिरता से व्यक्ति योग की ओर अग्रसर होता है। इस योग में व्यक्ति प्रमोदरहित हो जाता है। मन को संयम में रखकर कर्म करने से योग प्रारम्भ होता है। शरीर, मन और आत्मा इन तीनों के संयोग का नाम योग है।

योग व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। गीता में दर्शाया गया योग विकासोन्मुख, व्यापक और बहुउद्देशीय स्वरूप का है। योग से व्यक्ति अपने इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित कर सकता हैं, कार्यक्षम बन सकता है तथा शारीरिक और मानसिक दक्षता को प्राप्त कर शांतिप्रिय हो सकता है। योग प्राचीन काल में शांति, दीर्घायु व आरोग्य प्रदान करने वाला था जिसका लाभ प्राचीन भारतीय उठाया करते थे। वैसे तो प्राचीन साहित्यों का प्रमुख ग्रन्थ 'गीता' यह योग दर्शन का महान ग्रन्थ है जिसमें सभी अध्याय विभिन्न विषयों पर योग दर्शन की गहनतम विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं, फिर भी शारीरिक शिक्षा की दृष्टि से गीता में प्रतिपादित योग के प्रमुखत: तीन प्रकार गोवर होते हैं-

1) ज्ञान योग,

2) कर्म योग,

3) ध्यान योगा

इस प्रकार गीता और महाभारत में दर्शाए गये योग में हमें शरीर, मन और इन्द्रियों के द्वारा होनेवाली क्रियाओं में एकरूपता का दर्शन उपलब्ध होता है। शारीरिक शिक्षा के दृष्टिकोण से यदि विचार किया जाए तो इन योग की क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति का स्वस्थ विकास होते दिखाई देता है। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास में इन योग क्रियाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। इसी प्रकार गीता और महाभारत में कई प्रकार के योग की मीमांसा है जैसे सांख्य योग, कर्म योग, सन्यास योग, ज्ञान-विज्ञान योग, ब्रह्म योग, भक्ति योग व ध्यान योग आदि, इनमें शरीर और मन को संतुलित रखने के दृष्टिकोण से ध्यान का महत्व अधिक हैं।

योग का एक महत्वपूर्ण नियम शरीर के बाहरी और आंतरिक शुद्धि और आत्मतुष्टि हैं। बाहरी शुद्धि में शरीर की स्वच्छता, इन्द्रियों पर नियंत्रण, उत्तम कर्मों का आचरण, स्वधर्म का पालन, अहिंसा अर्थात मन, वाणी और शरीर से किसी को कष्ट न देना, आदि सम्मिलित होते हैं।

आन्तरिक शुद्धि का अर्थ हैं छल, कपट, राग, द्वेष, क्रोध, मोह, अहंकार, शोक इत्यादि से मुक्त रहना तथा आत्मतुष्टि का अर्थ सभी परिस्थितियों में संतुष्ट रहते हुए कर्म करना।

प्राचीन भारत में योग के अन्तर्गत शरीर, मन और आत्मा इन तीनों को सम्मिलित किया गया था ताकि व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास हो सके। शारीरिक धरातल पर देखा जाए तो जो व्यक्ति कर्म में विश्वास रखते हुए कर्म करते चला जाए वह 'योगी' हैं। अपने जीवन में कर्म को स्थान देने वाला योगी व्यक्तियों में श्रेष्ठ होता है। कर्म के साथ-साथ जिनकी स्मृति परमात्मा में होती हैं वे योगियों में 'परमश्रेष्ठ योगी' समझे जाते हैं। जो योगी मानसिकरूपेण विचलित नहीं होता वह काम, क्रोध इत्यादि संवेगों पर विजय प्राप्त करनेवाला होता है। इस प्रकार शरीर, मन और आत्मा के धरातल पर जो व्यक्ति परिपक्व है वही योगी समझा गया है।

गीता में योगी के निम्नलिखित लक्षण बताये गये हैं।

1. योगी को इन्द्रियों के विषय में राम और द्वेष नहीं होता हैं।
2. उसकी कोई कामना नहीं होती हैं।
3. वह बाहर और भीतर से शुद्ध होता है।
4. वह शुभ (सफलता) और अशुभ (असफलता) में समान होता है।
5. वह शत्रु-मित्र, सुख-दुःख तथा सर्दी-गर्मी में समान भाव वाला होता है।
6. वह आत्म-संतुष्ट होता है।
7. वह कर्म फल का त्यागी होता है। वह लोकहित के लिए कर्म करता हैं।
8. वह शांति प्रिय होता है।
9. वह विकार रहित होता है।
10. वह शरीर और मन को नियंत्रण में रखने वाला होता है।

योग यह शब्द 'युज' इस धातु से लिया गया है इसलिए इसका अर्थ जो एकत्रीकरण, संगति है। गीता के अनुसार- "आत्मा में स्थित होकर सहज ही परमात्मा से मन को जोड़ना तथा परमात्मा से संस्पर्श करके आंतरिक सुख व अनंत आनंद में स्थित होना 'योग' है।" दरअसल 'योग' मन पर नियंत्रण सखने की प्रक्रिया है। इस सम्बन्ध में नागेन्द्र का मत है- " योग वह व्यवस्थित चेतन प्रक्रिया है जो मनुष्य के विकास की प्रक्रिया को बहुत संकुचित कर सकती है"।

शरीर और मन की स्थिरता से व्यक्ति योग की ओर अग्रसर होता है। इस योग में व्यक्ति प्रमादरहित हो जाता है। मन को संयम में रखकर कर्म करने से योग प्रारम्भ होता है। शरीर, मन और आत्मा इन तीनों के संयोग का नाम योग हैं।

गीता में कृष्ण ने योग दर्शन को अति प्राचीन दर्शाया हैं। साथ ही इसको एक उत्तम तथा मर्म का विषय घोषित किया हैं। इस सम्बंध में आधुनिक विचारकों का भी यही मत हैं। "ये प्रथाएं सिंधु सभ्यता के बेहद पुराने ठोस भौतिक अवशेषों जैसे पत्थर की मूर्तियों को संक्रमित कर रही थीं, और 'अवशेषों' पर दर्शाए गए चित्र स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि देश में तीसरी सहस्राब्दी की शुरुआत में योग प्रथाएं प्रचलित थीं।

योग यह प्राचीन भारतीयों के मोक्ष प्राप्ति का साधन बन गया था। वेदों व उपनिषदों में भी योग दर्शन को आत्म तत्व का साक्षात्कार बताया है। यद्यपि प्राचीन कृष्ण साहित्य में योग को पूर्णत: आध्यात्मिक धरातल पर अवतरित किया है, फिर भी योग द्वारा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के महत्व को वंचित नहीं किया गया। बल्कि शारीरिक क्रियों के क्षेत्र में योग के महत्व को सुदृढ़ता के साथ प्रतिपादित किया गया। कृष्ण ने योग की शिक्षा अर्जुन को वहां दी जहां शारीरिक एवं मानसिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली और रणकुशल योद्धागण उपस्थित थे। अर्जुन एक योद्धा था, लेकिन अज्ञान व मोहवश कायरों की भांति युद्ध मैदान पर धनुष छोड़कर बैठ गया था। उसकी इस कायरता और नपुसंकता को नष्ट करने के लिए कृष्ण ने अर्जुन को कई प्रकार की योग शिक्षा प्रदान की जिसमें कर्म योग प्रधान विषय था। इससे सिद्ध होता है कि योग शिक्षा से व्यक्ति सक्रिय, कर्त्तव्यपरायण, संतुलित और ज्ञानी बनता है।

योग साधना से मन को संतुलित रखने में सहायता प्राप्त होती हैं तथा समत्व बुद्धि को जन्म मिलता है। इस समत्व बुद्धि के फलस्वरूप किसी भी प्रतिकूल व संकटमयी परिस्थिति में व्यक्ति स्थिर रह सकता है। कोई योद्धा भी हो सकता है और साथ ही साथ योगी भी, यह गीता जैसे योगशास्त्र का महान रहस्य हैं। यदि कृष्ण अर्जुन को योग की शिक्षा नहीं देते तो अर्जुन अपने कर्त्तव्य से तथा अपनी शारीरिक संक्रियता और मानसिक स्थिरता से विमुख हो जाता। अतः स्पष्ट है कि कृष्ण का योग दर्शन सम्पूर्ण मानवी जाति के लिए जीवन कर्त्तव्य का संदेश है। शायद ही विश्व के अन्य प्राचीन साहित्य में योग शिक्षा का ऐसा महान दर्शन दृगोचर होता है।

प्राचीन काल में योग के प्रकार

वैसे तो प्राचीन साहित्यो का प्रमुख ग्रन्थ 'गीता' यह योग दर्शन का महान ग्रन्थ है जिसमें सभी अध्याय विभिन्न विषयों पर योग दर्शन की गहनतम विचारधारा को प्रस्तुत करतें हैं, फिर भी शारीरिक शिक्षा की दृष्टि से गीता में प्रतिपादित योग के प्रमुखतः तीन प्रकार दृगोचर होते हैं-

1) ज्ञान योग,

2) कर्म योग,

3) ध्यान योगा

1) ज्ञान योग

मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओं में कर्त्तापन के अभिमान से रहित होकर एकीभाव से स्थित रहने का नाम "ज्ञान योग" है। यह योग मनुष्य में सतर्कता का विस्तार करता है। इसी को सन्यास व सांख्य योग इत्यादि नाम दिए गये हैं। ज्ञान को शुद्ध अंतःकरण वाला पुरुष समत्व बुद्धिरूप योग की दीर्घकालीन साधना के बाद अपने में अनुभव करता है।

2) कर्म योग

फल और आसक्ति को त्यागकर समत्वबुद्धि से कर्म करने को 'निष्काम कर्म 'योग' कहा गया है। गीता में समत्व भाव को योग कहा गया है। समत्व का अर्थ किसी भी कर्म में उसके पूर्ण होने और न होने तथा उसके फल में समभाव रहने का नाम है। इस समभाव को धारण करने वाले कर्म योगी के द्वारा शरीर नियंत्रण में रहता है तथा उसका अंत करण शुद्ध होता है। कर्म योग की महत्ता जीवन क्षेत्र में अत्याधिक हैं, क्योंकि बिना कर्म का संपादन किए इस संसार में कुछ भी नहीं है।

संपूर्ण गीता में कृष्ण ने कर्म योग को आधारभूत और महत्वपूर्ण दर्शाया है। कर्म योग सभी प्रकार के योग का आधार हैं और यह योग का एक ऐसा प्रकार हैं जो व्यक्ति के पूर्ण जीवन और उसके स्वस्थ व्यक्ति की रचना करता है। यह एक ऐसा मार्ग हैं जो हमें पूर्ण रूपेण सक्रिय रखते हुए कार्यों के फल को मानवता के प्रति समर्पित करने की सीख देता है।

3) ध्यान योग –

'ध्यान योग' यह मन की एकाग्रचित्त स्थिति हैं। इसमें इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है तथा महाभारत में कर्मों को ईश्वर के प्रति समर्पित किया जाता हैं।

1. देश (एकान्त में आसन लगाना-देश योग)
2. कर्म (आहार-विहार और कर्म नियमित रूप से करना - कर्म योग)
3. अनुराग (परमात्मा की प्राप्ति में तीव्र अनुराग रखना- अनुराग योग)
4. अर्थ (केवल आवश्यक सामग्री रखना- अर्थ योग)
5. उपाय (ध्यानोपयोगी आसन से बैठना उपाय योग)
6. अपाय (संसार के विषयों से अनासक्त हो जाना अपाय योग)
7. निश्चय (गुरू एवं वेद शास्त्र पर विश्वास रखना - निश्चय योग)
8. चक्षुष (चक्षु को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करना - चक्षु योग)
9. आहार (शुद्ध और सात्विक भोजन का नाम आहार योग)
10. संहार (इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना संहार योग)

11. मन (मन को एकाग्र करना-मनोयोग)

12. दर्शन (दुःख और दोषों का वैराग्यपूर्वक दर्शन-दर्शन योग)

विनोबा भावे' के अनुसार योग क्रिया में तीन बातें मुख्य रूप से सम्मिलित हैं-

1) यज्ञ,

2) दान,

3) तप

'यज्ञ' का उद्देश्य रचनात्मक कार्यों की पूर्ति, उच्चकोटि के निष्पादन, नए कौशल, नए कार्यो की उत्पत्ति से लिया जाता है। हम इस संसार में सिर पर ऋणों का भार लेकर जन्में हैं। अत: इन ऋणों से मुक्त हो जाना ही 'यज्ञ' हैं, तथा समाज की सेवा और उसका विकास करते हुए समाज के ऋण से मुक्त हो जाना 'दान' है, तथा शरीर के दोषों को मुक्त करना 'तप' हैं।

प्राचीन काल में योग विधि और योग सिद्धि

प्राचीन साहित्यों का प्रमुख ग्रन्थ गीता में कई प्रकार के योग की मीमांसा है जैसे-सांख्य योग, कर्म योग, सन्यास योग, ज्ञान-विज्ञान योग, ब्रह्म योग, भक्ति योग व ध्यान योग आदि, इनमें शरीर और मन को संतुलित रखने के दृष्टिकोण से ध्यान का महत्व अधिक हैं। गीता में ध्यान योग की विधि इस प्रकार दर्शायी हैं-

(1) 'अपने आसन पर मृगछाला बिछाना।

(2) आसन को न अधिक ऊंचा और न अधिक नीचा करना।

पतंजलि योग सूत्र में आठ पद्धतियों का उल्लेख मिलता है। वन पर्व में भी योग के निम्नलिखित आठ अंग दर्शाये हैं–

- यम
- नियम
- आसन
- प्राणायाम
- प्रत्याहार
- धारणा
- ध्यान
- समाधि

(3) स्थिर होकर उस आसन पर बैठना तथा मन को एकाग्र करके चित्त और इंन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करते हुए योगाभ्यास करना चाहिए।

(4) काया, शिर और ग्रीवा को समान और अचल धारण किए हुए नासिका के अज को देखकर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ और ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहता हुआ भयरहित, शांत और सावधान होकर मन को वश में करके स्थिर होना चाहिए। योगाभ्यास करते समय निर्मल भाव, मन की शुद्धि और प्रसन्नता आवश्यक हैं। मन की शुद्धि और प्रसन्नता के लिए 'अष्टांग योग' का अधिक महत्व हैं।

प्राचीन काल में योग के आधारभूत नियम

इन्द्रिय निग्रह

इन्द्रिय निग्रह का आशय है इन्द्रियों को नियंत्रित करना जिससे मन की चंचलता समाप्त होती हैं। और मन एकाग्र स्थिति को ग्रहण करता है तथा इससे बुद्धि भी स्थिर होती हैं। यदि इन्द्रिय निग्रह नहीं किया तो मन विचलित होकर विवेक समाप्त हो जाता है। यह नियंत्रण प्राणायाम नामक आंतरिक क्रिया से किया जाता हैं। मन, बंद्धि और शरीर ये तीनों एक-दूसरे के पूरक हैं त इन तीनों का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। मन के नियंत्रित अवस्था में विवेक जागृत होता है. बुद्धि स्थिर होकर योग्य निर्णय ले सकती हैं तथा इसके परिणाम स्वरूप शरीर का संचालन योग्य रीति से हो सकता है।

ब्रह्मचर्य

योग का दूसरा महत्वपूर्ण नियम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है। यद्यपि प्राचीन भारत के साहित्य में ब्रह्मचर्य में शरीर की शुद्धि, मन की शुद्धि व इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित करने का अभिप्राय अंतर्भूत हैं, लेकिन गीता में ब्रह्मचर्य को मुख्य रूप से 'काम' नामक विकारी वृत्ति से मुक्त रहने का आशय व्यक्त किया है। काम यह आसुरी का लक्षण हैं और आसुरी वृत्ति में ब्रह्मचर्य खो जाता है। काम काम के द्वारा शारीरिक और मानसिक क्षय होता है, साथ ही वह आत्मिक मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, इसलिए यह मनुष्य का महा शत्रु हैं जिसका ज्ञान रूपी तलवार से हनन होना चाहिए।

सात्विक और संतुलित आहार तथा विश्राम का सुवर्ण नियम अन्न का शरीर और मन दोनो पर प्रभाव पड़ता है। योग में शारीरिक और मानसिक शुद्धि का महत्व है, अतः ऐसा भोजन लेना चाहिए जिसमें मनुष्य की इन्द्रियां उग्र स्वरूप की न हो तथा उसका मन शांत बना रहें। ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए जो संयम युक्त हो। चूंकि योगी पूर्णत: स्वभाव से सात्विक होता है इसलिए उसने सात्विक भोजन लेना चाहिए। ऐसा आहार व्यक्ति में बलवर्द्धक और आरोग्यवर्द्धक होता है। जिससे मन की एकाग्रता सिद्ध होती हैं तथा वह अपने कर्त्तव्य को दक्षतापूर्ण कर सकता है।

बाहरी व आंतरिक शुद्धि और आत्मतुष्टि योग का एक महत्वपूर्ण नियम शरीर के बाहरी और आंतरिक शुद्धि और आत्मतुष्टि हैं। बाहरी शुद्धि में शरीर की स्वच्छता, इन्द्रियों पर नियंत्रण, उत्तम कर्मों का आचरण, स्वधर्म का पालन, अहिंसा अर्थात मन, वाणी और शरीर से किसी को कष्ट न देना, आदि सम्मिलित होते हैं। आन्तरिक शुद्धि का अर्थ है छल, कपट, राग, द्वेष, क्रोध, मोह, अहंकार, शोक इत्यादि से मुक्त रहना' तथा आत्मतुष्टि का अर्थ सभी परिस्थितियों में संतुष्ट रहते हुए कर्म करना।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन साहित्यों में उपलब्ध योग से समन्धत दार्शनिक अभिव्यक्ति यह जीवन की उच्चतम और आदर्श पराकाष्ठा हैं। प्राचीन भारतीयों को जीवन के समस्त अंगों को स्वस्थ एवं विकसित अवस्था में रखने के लिए योग दर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ होगा।

निष्कर्ष

अंत में, योग का एक समृद्ध और प्राचीन इतिहास है जो हजारों साल पुराना है। योग का अभ्यास प्राचीन काल में हुआ था, जिसकी जड़ें लगभग 3000 ईसा पूर्व सिंधु घाटी सभ्यता में थीं। हालाँकि, एक व्यापक प्रणाली के रूप में योग के वास्तविक विकास का श्रेय प्राचीन ऋषि पतंजलि को दिया जाता है, जिन्होंने दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास योग सूत्र संकलित किए थे।

प्राचीन समय में, योग को मुख्य रूप से एक आध्यात्मिक अनुशासन और आत्मज्ञान के मार्ग के रूप में देखा जाता था। इसमें शारीरिक आसन (आसन), श्वास अभ्यास (प्राणायाम), ध्यान, नैतिक दिशानिर्देश और दार्शनिक सिद्धांत शामिल हैं। प्राचीन योगी योग के अभ्यास के माध्यम से परमात्मा के साथ मिलन और भौतिक दुनिया की सीमाओं को पार करने में विश्वास करते थे।

योग हिंदू धर्म और अन्य प्राचीन भारतीय दर्शन के साथ गहराई से जुड़ा हुआ था। इसे आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने और उच्च स्व या सार्वभौमिक चेतना से जुड़ने का एक साधन माना जाता था। योगाभ्यास आंतरिक शांति, आत्म-अनुशासन और मन, शरीर और आत्मा के बीच सामंजस्य की खोज से भी जुड़े थे।

पूरे इतिहास में, योग विकसित हुआ और अलग-अलग समय और संस्कृतियों के अनुकूल हुआ। आधुनिक समय में, योग ने शारीरिक व्यायाम, तनाव से राहत और समग्र कल्याण के रूप में व्यापक लोकप्रियता हासिल की है। शारीरिक और मानसिक कल्याण के लिए इसके लाभों का प्रदर्शन करते हुए, इसका वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया गया है और विभिन्न स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियों में एकीकृत किया गया है।

समय के साथ इसके परिवर्तन के बावजूद, योग का सार इसकी प्राचीन उत्पत्ति में निहित है। प्राचीन काल में निर्धारित सिद्धांत और अभ्यास दुनिया भर के चिकित्सकों को मार्गदर्शन और प्रेरित करते रहे हैं। योग की स्थायी विरासत इसके कालातीत ज्ञान और पीढ़ियों में मानव अनुभव को बढ़ाने की क्षमता के लिए एक वसीयतनामा के रूप में कार्य करती है।

संदर्भ

1. मूल ग्रन्थ अर्थशास्त्र (कौटिल्य) संपा आर. शामशास्त्री मैसूर, १९१९ द्य कुमार सम्भव (कालिदास) व्याख्याकार : कन्हैयालाल जोशी वाराणसी चौखम्भा ओरियन्टानिका १९७८ निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९२७

2. दासबोध (समर्थ रामदास) पुणे, समर्थ रामदास संशोधन संस्था, १९७८ द्य पातंजलयोगसूत्रम् संपा. रामशंकर भट्टाचार्य, व्याख्याकार अमलधारी सिंह वाराणसी: भारतीय विद्या प्रकाशन, १९६९ च बृहदारण्यकोपनिषद् गीता प्रेस, गोरखपुर हा (सानुवाद शंकर भाष्यसहित)

3. महाभारत गीता प्रेस गोरखपुर च (प्रथम खण्ड से षष्ठ खण्ड तक हिन्दी अनुवाद सहित) हा यजुर्वेद संपा. श्रीराम शर्मा ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर) बरेली, संस्कृति संस्थान. १९८१ हा ऋग्वेद (खण्ड एक से चार) संपा श्रीराम शर्मा ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर) बरेली, संस्कृति संस्थान, हा विष्णु पुराण अनुवाद- मुनिलाल गुप्त द्य श्रीमदभागवत गीता गीता प्रेस, गोरखपुर च

4. आधुनिक ग्रन्थ सूची द्य हिन्दी व मराठी द्य खरे, पी. सी. भारतीय समाज एवं संस्कृति (रीवा पुस्तक भवन, १९८०) च कुल पृष्ठ २५६ द्य तिलक, बाल गंगाधर श्रीमद्भगवतगीता रहस्य (मराठी) चौथी आवृत्ति तिलक रामचन्द्र बलवंत प्रकाशन, बम्बई, ४ जुलाई १९३२ कुल पृष्ठ ८५४ द्य ब्रह्मकुमार जगदीशचन्द्र महाभारत और गीता का सच्चा स्वरूप और सार (माउंट आबू द्य ब्रहमकुमारी ईश्वरी विश्वविद्यालय, पांडव भवन, १९७७) रा मिश्र, जयशंकर प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास (पटना बिहार हिन्दी य ग्रन्थ अकादमी, १९७४ कुल पृष्ठ ७२४